# हमें डी एन ए के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवादः अरविन्द गुप्ता

# हमें डी. एन. ए. के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

पीढ़ी-दर-पीढो मनुष्य और पौधे अपने जैसे ही मनुष्य और पौधे जनते रहते हैं। वैज्ञानिकों को पता था कि हमारे जीन्स में अनुवांशिक गुणधर्म मौजूद होते हैं और वो कोशिका (सेल) की नाभि में होती हैं। पर यह सब कुछ कैसे होता है? 1940 से लेकर 1960 से के बीच इसका रहस्य धीरे-धीरे करके खुला। जीन्स, DNA की बनी होती हैं और उनमें हमारे वंशानुक्रम का नक्शा या ब्लूप्रिंट होता है।

आइसक एसिमोव के अनुसार, 'सेल के न्यूक्लियस और RNA व DNA का साईटोप्लाज्म, न्यूक्लियस और प्रोटीन्स द्वारा जीवन की निरंतरता की व्याख्या बेहद उत्तेजक और रोचक है।'

स्पष्ट और सरल भाषा में एसिमोव पाठकों को DNA पदार्थ के बारे में समझाते हैं - जिनके बिना जीवित प्राणी कभी प्रजनन नहीं कर पाते और शायद जीवन कभी शुरू ही नहीं होता।

## 1. न्यूक्लिक एसिड के टुकड़े

1869 में 25 वर्षीय स्विस केमिस्ट जोहान फ्रेडरिच मीशर (1844-1895) एक जर्मन केमिस्ट अर्नेस्ट फेलिक्स होहपोजेलर (1825-1895) की प्रयोगशाला में काम कर रहा था।

मेशर मृत और टूटे हुए सेल्स (कोशिकाओं) के साथ काम कर रहा था। सेल्स वे छोटी चीजें होती हैं जिनसे पौधों और प्राणियों के शरीर बनते हैं।

सेल किन पदार्थों का बना होता है? उन दिनों वैज्ञानिक इस प्रश्न के उत्तर की खोज में लगे थे। मीशर भी इसी विषय पर काम कर रहा था। उसे पता था कि सेल्स में प्रोटीन्स होते हैं जो बहुत ही जटिल पदार्थ होते हैं। और वो उन्हें सरल टुकड़ों में तोड़ना चाहता था।

उसने अपने नमूने में पेपसिन नाम का एंजाइम डाला। एंजाइम ऐसा पदार्थ होता है जो रासायनिक प्रक्रिया को तेज करता है। पेपसिन, प्रोटीन के बड़े परमाणुओं को तोड़कर उनके छोटे टुकड़े करता है। पर मेशर ने देखा कि सेल में कुछ ऐसे परमाणु भी थे जिन पर पेपसिन का कोई असर नहीं हुआ।

मेशर ने जिस पदार्थ पर कोई असर नहीं हुआ था उसे उसने अलग किया और उस पर कुछ रासायनिक परीक्षण किए। उनमें किस प्रकार के अणु थे? मेशर यह जानना चाहता था। उसे आश्चर्य हुआ जब उसे उनमें फास्फोरस के अणु मिले।

सामान्यत: फास्फोरस कोई अनूठा पदार्थ नहीं है और वो पत्थरों में पाया जाता है। उससे पहले जीवित टिश्यूज में केवल एक बार ही फास्फोरस मिला था। यह वसायुक्त पदार्थ था लेसीथिन - जिसकी खोज मेशर के गुरू होहपोजेलर ने की थी।

मेशर ने नए पदार्थ का नाम दिया न्यूक्लीन क्योंकि वो सेल के न्यूक्लियस में मिला था।

मेशर अपने काम को होहपोजेलर के पास ले गया। होहपोजेलर को लगा कि मेशर क्योंकि अभी युवा था और उसका अनुभव कम था अत: उसे इस खोज का अभी ऐलान नहीं करना चाहिए। हो सकता है उसने उसमें कोई गल्ती की हो? इसलिए होहपोजेलर ने स्वयं उसको जांचने का बीड़ा उठाया।

दो वर्ष तक होहपोजेलर ने उस पर शोध किया और वो तभी संतुष्ट हुआ जब उसे ऐसा ही पदार्थ खमीर (यीस्ट) में मिला।

होहपोजेलर को जो पदार्थ मिला था वो मेशर से कुछ भिन्न था इसलिए उन्हें अलग-अलग नाम दिए गए। मेशर के पदार्थ को प्राणियों के एक अंग 'थायमस ग्लैन्ड'

से आसानी से प्राप्त किया जा सकता था। इसलिए उसका नाम 'थायमस न्यूक्लीन' रखा गया। होहपोजेलर के पदार्थ को खमीर से प्राप्त किया जा सकता था इसलिए उसका नाम 'यीस्ट न्यूक्लीन' रखा गया।

होहपोजेलर का एक और छात्र था एलब्रेख्त कौसिल (1853-1927)। 1879 में उसने मेशर के न्यूक्लीन का अध्ययन किया।

**सेल (कोशिका)**
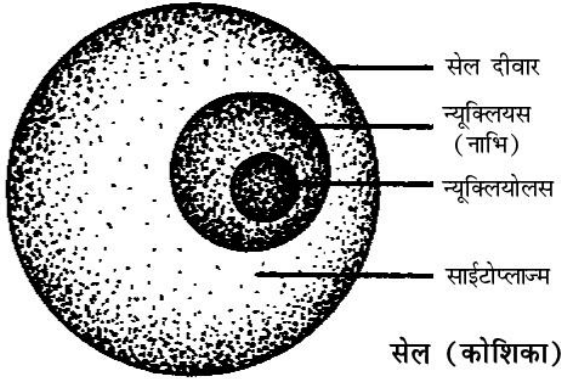
मेशर ने खोजा कि सैल्मन के स्पर्म सेल से निकलने वाला न्यूक्लीन एक बहुत सरल प्रोटीन से जुड़ा था जिसका नाम उसने 'प्रोटोमीन' रखा। वा उन्हें आसानी से अलग कर सका। कौसिल ने प्रोटीन और न्यूक्लीन के बीच के रिश्ते को समझने का प्रयास किया।

कौसिल ने पाया कि जो न्यूक्लीन उसे मिला था वो एक अलग प्रोटीन से जुड़ा था। यह प्रोटीन मेशर के प्रोटोमीन जैसा सरल नहीं परन्तु जटिल था। कौसिल ने अपने पोटीन को 'हिस्टोन' नाम दिया। यूनानी में 'हिस्टोन' का अर्थ 'सेल' होता है। और न्यूक्लीन और प्रोटीन की जोड़ी मिलकर - न्यूक्लियोप्रोटीन बनाती है।

कौसिल आसानी से हिस्टोन और न्यूक्लीन को अलग-अलग कर पाया। वो दोनों आपस में इसलिए जुड़े थे क्योंकि न्यूक्लोन एक एसिड (अम्ल) का काम कर रहा था और हिस्टोन एक बेस (क्षार) का। अम्ल और क्षार एक दूसरे से जुड़ते हैं। न्यूक्लीन के एसिड होने के कारण उसका नाम (न्यूक्लिक-एसिड) पड़ा और फिर लोग थायमस न्यूक्लिक-एसिड और यीस्ट न्यूक्लिक-एसिड के बारे में सोचने लगे।

उस समय किसो को पता नहीं था कि न्यूक्लिक-एसिड के परमाणु किस प्रकार के होंगे और उन परमाणुओं में अणु आपस में जिस प्रकार जुड़े होंगे। यह समझने के लिए कौसिल ने रासानिक प्रक्रियाओं द्वारा उन्हें छोटे टुकड़ों में विखंडित करने की बात सोची।

शायद छोटे टुकड़ों को केमिस्ट आसानी से पहचान पाएं। और फिर इन छोटे टुकड़ों से न्यूक्लिक-एसिड के मॉडल को बनाना सम्भव हो।

कौसिल और उसके छात्रों ने न्यूक्लिक-एसिड पर सालों काम किया और वे उसके कुछ अवयवों को पहचान पाए। कुछ अणु डबल-रिंग के बने थे। इस डबल-रिंग में एक छह-अणुओं की और एक पांच-अणुओं के रिंग थे और वे इस प्रकार जुड़े थे जिससे दो-अणु, दोनों रिंगों के हिस्से थे।

डबल-रिंग के हरेक कोण पर एक अणु था। गिनने से नौ कोण और नौ अणु मिलेंगे। इसमें चार अणु नाईट्रोजन के होंगे और उन्हें चित्र में N से निर्धारित किया गया है। बाकी चारों सभी कार्बन के अणु होंगे।
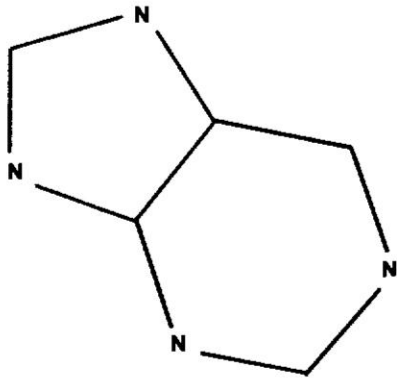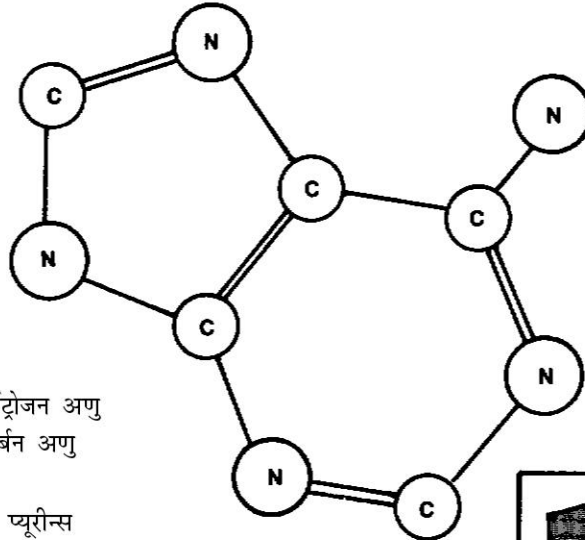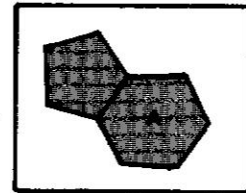
रासायन वैज्ञानिकों ने कुछ प्यूरीन्स का अध्ययन किया था। पर कौसिल ने दो नई प्यूरीन्स खोजीं जो हरेक न्यूक्लिक-एसिड का हिस्सा थीं। एक थी गुआनीन और दूसरी एडिनाइन। एडिनाइन में एक अतिरिक्त नाईट्रोजन का अणु होता है और गुआनीन में अतिरिक्त नाईट्रोजन और आक्सीजन के अणु होते हैं।
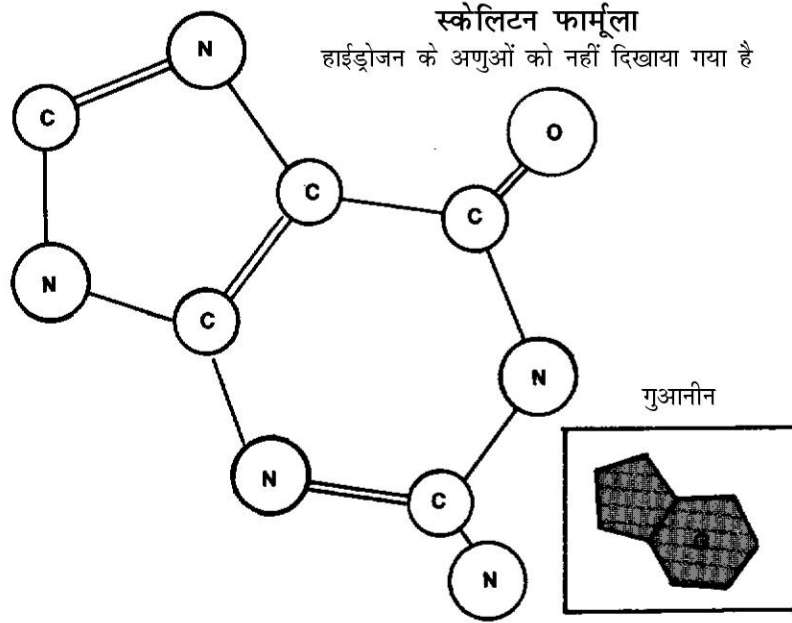
कौसिल को ऐसे न्यूक्लिक-एसिड के टुकड़े भी मिले जो प्यूरीन्स से सरल थे। जो उनमें से सरल थे उनके परमाणु में छह अणुओं की केवल एक रिंग थी। वो प्यूरीन्स के छह-अणुओं वाले रिंग जैसा ही था, पर उसमें पांच-अणुओं के रिंग वाला हिस्सा गायब था।

ऐसे रिंग को पिरिमिडीन कहते हैं। अनेकों अलग-अलग तरह की पिरिमिडीनस हो सकती हैं क्योंकि रिंग के भिन्न स्थानों पर अलग-अलग साईड-रिंग्स को जोड़ा जा सकता है।

कौसिल को थासमस न्यूक्लिक-एसिड के टुकड़ों में दो पिरिमिडीन मिलीं। उनमें से एक साईटोसीन थी और दूसरी थायमीन। साईटोसीन और थाईमीन को अक्सर उनके

पहले अक्षरों (c) और (t) द्वारा निर्धारित किया जाता है। मैंने यहां पर छोटे अक्षरों का उपयोग किया है क्योंकि सिंगल रिंग वाली पिरिमिडीन के परमाणु छोटे होते हैं।
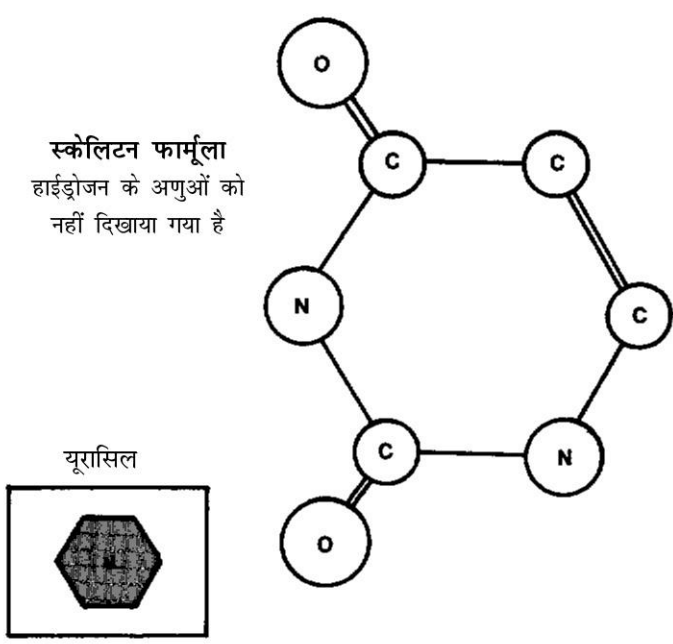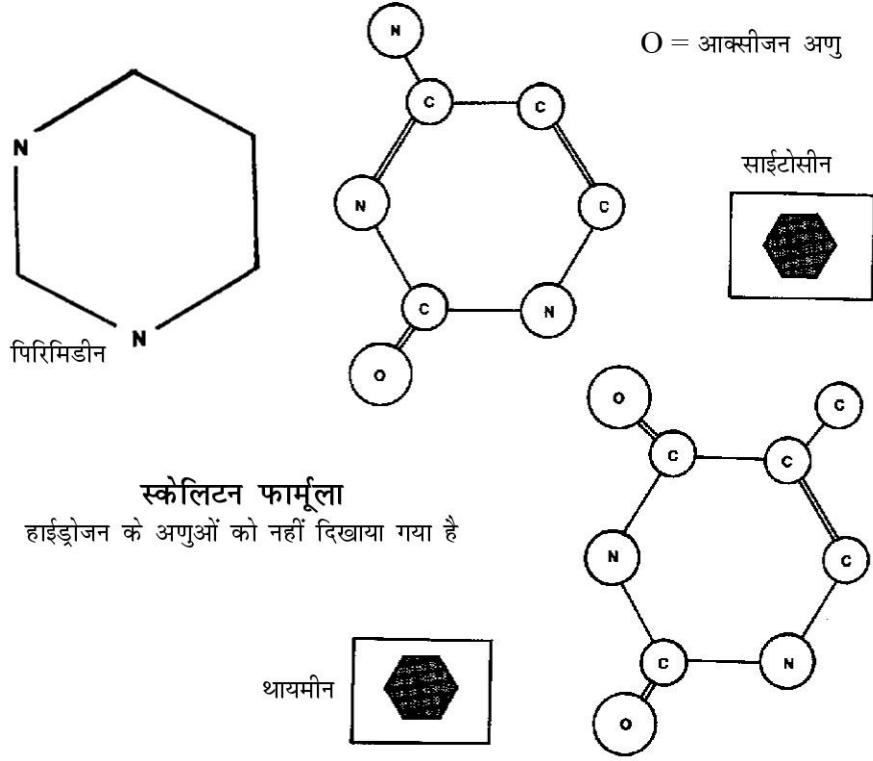
अंत में थायमस और यीस्ट के न्यूक्लिक-एसिड्स के परमाणुओं के बीच का अंतर पता चला। दोनों में प्यूरीन, गुआनीन और एडिनाइन और दोनों में पिरिमिडीन और साईटोसीन भी थी। केवल थायमस न्यूक्लिक-एसिड्स में एक थाईमीन थी, इसलिए थाईमीन का यह नाम है। यीस्ट यूक्लिक-एसिड्स में एक अन्य पिरिमिडीन थी, वो थाईमीन से

मिलती-जुलती थी फिर भी अलग थी। इस दूसरी पिरिमिडीन का नाम यूरासिल है और उसे हम (u) द्वारा निर्धारित कर सकते हैं। थाईमीन और यूरासिल में एक अंतर है - थाईमीन में एक अतिरिक्त कार्बन का अणु होता है।

न्यूक्लिक एसिड और अन्य शोधकार्यों के लिए कौसिल को 1910 में चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरुस्कार मिला।

वैसे न्यूक्लिक एसिड में प्यूरीन और पिरिमिडीन के अलावा भी बहुत कुछ है। न्यूक्लिक एसिड में कुछ अन्य टुकड़ों को कौसिल नहीं पहचान पाया था। उसमें से एक टुकड़े का ढांचा उसे शक्कर जैसा लगा, पर वो इसे पक्के तौर पर नहीं कह पाया।

एक रूसी-अमरीकी रासायन वैज्ञानिक फीबियस एरान थियोडोर लीवन (1869-1940) केमिस्ट्री पढ़ने के लिए जर्मनी गया। वहां अन्य लोगों के अलावा उसने कौसिल के साथ भी काम किया और उसके कारण न्यूक्लिक एसिड में उसकी रुचि जागी। फिर अमरीका लौटने के बाद वो जीवन भर इसी विषय पर शोध करता रहा।

उसने यीस्ट यूक्लिक-एसिड्स के परमाणुओं को विखंडित किया और उनके एक भाग में उसे शक्कर का एक परमाणु मिला जिसकी सम्भावना पहले कौसिल ने जताई थी।

रासायन वैज्ञानिकों को पता था कि जीवित टिश्यूज मं जो सरल शक्कर पाई जाती है उसमें छह कार्बन के अणु होते हैं। पर जो शक्कर लीवन को मिली उसमें केवल पांच ही कार्बन के अणु थे। उसके परमाणु में कार्बन के साथ-साथ दस हाईड्रोजन के अणु और पांच आक्सीजन के अणु भी थे।

पर यह जानकारी पर्याप्त नहीं थी क्यांकि वे अणु अलग-अलग नमूनों में जुड़ कर आठ भिन्न शक्कर बना सकते थे। इनमें प्रत्येक शक्कर के अलग गुणधर्म होते थे। अब लीवन को यह पता करना था कि यीस्ट यूक्लिक-एसिड्स में उसे कौन सी शक्कर मिली थी।

1909 में लीवन ने सही शक्कर को पहचाना। इसे केमिस्ट 'राईबाज' के नाम से जानते थे और संक्षिप्त में हम इसे 'रिब' बुला सकते हैं।
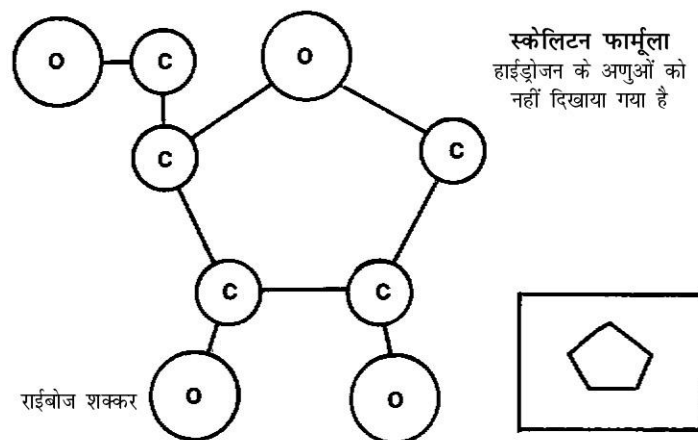
लीवन को थायमस न्यूक्लिक-एसिड्स के साथ काफी परेशानी हुई। उसमें पांच-कार्बन वाला शक्कर का टुकड़ा था। परन्तु थायमस न्यूक्लिक-एसिड्स की पांच-कार्बन वाली शक्कर काफी अनूठी थी। केमिस्टों को उसके बारे में कुछ पता नहीं था।

सिर्फ 1929 में ही लीवन इस पांच-कार्बन वाली शक्कर की विशेषता को समझ पाया। उसकी आणविक संरचना बिल्कुल 'राईबोज' जैसी थी पर उसमें एक आक्सीजन का अणु गायब था। केमिस्टों ने ऐसी शक्कर को पहले कभी नहीं देखा था। क्योंकि लीवन पहली बार उसका अध्ययन कर रहा था तो उसमें मुश्किलें तो आनी ही थीं।

लीवन ने इस शक्कर का नाम दिया 'डीआक्सीराईबोज' जहां 'डीआक्सी' का अर्थ था 'एक आक्सीजन की कमी'। संक्षिप्त में हम उसे 'डीरिब' कह सकते हैं।
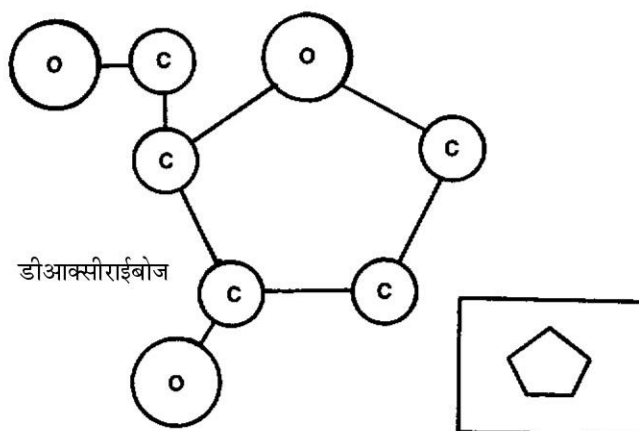
अब हम स्पष्ट देख सकते हैं कि दो प्रकार क न्यूक्लिक-एसिड में से यीस्ट न्यूक्लिक-एसिड के परमाणु में राईबोज और यूरासिल था। जबकि थायमस न्यूक्लिक-एसिड के परमाणु में डीआक्सीराईबोज और थाईमीन थी।

केमिस्ट एक निर्णय पर पहुंचे थे कि राईबोज और डीआक्सीराईबोज के बीच का अंतर, यूरासिल और थाईमीन के बीच के अंतर से अधिक महत्वपूर्ण था। इसलिए वो यीस्ट न्यूक्लिक-एसिड को 'राईबोन्यूक्लिक-एसिड' और थायमस न्यूक्लिक-एसिड को 'डीराईबोन्यूक्लिक-एसिड' बुलाने लगे। यह नाम काफी जटिल हैं इसलिए आमतौर पर उनके पहले अक्षर ही उपयोग किए जाते हैं। 'राईबोन्यूक्लिक-एसिड' को सामान्यतः RNA (आर.एन.ए.) और 'डीराईबोन्यूक्लिक-एसिड' को DNA (डी.एन.ए.) बुलाया जाता है।

RNA और DNA दोनों में फास्फोरस भी पाया जाता है। इस फास्फोरस ने मेशर को शुरू में काफी चकित किया था। फास्फोरस के अणु न्यूक्लिक एसिड में अकेले नहीं पाए जाते हैं। वो हमेशा एक समूह का हिस्सा होते हैं जिनमें हाईड्रोजन और आक्सीजन के अणु भी होते हैं। इस मिश्रण को फास्फेट समूह कहा जाता है और सक्षिप्त में हम उन्हें (ph) कह सकते हैं।
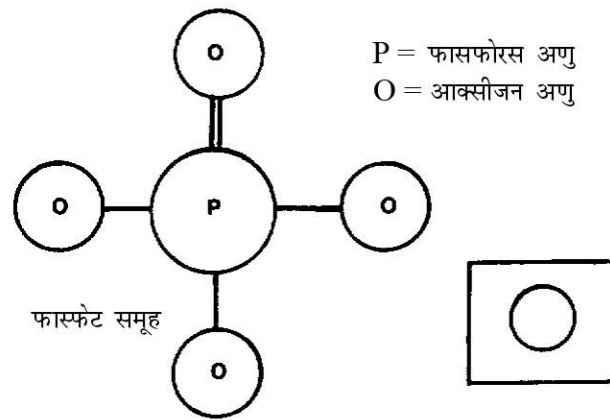
लीवन ने इन सब टुकड़ों को जोड़कर न्यूक्लिक-एसिड कैसे बनते हैं यह समझने का प्रयास किया। प्यूरीन्स और पिरिमिडीन्स राईबोज (या डीआक्सीराईबोज) के साथ जुड़ी होती हैं। और यह सब फास्फेट समूह के साथ जुड़ा होता है।

RNA परमाणु में यह समूह इस प्रकार का दिखेगा

A - rib - ph

DNA परमाणु में यह समूह इस प्रकार का दिखेगा

A - derib - ph

दोनों ही स्थितियों में इस समूह का नाम न्यूक्लियोटाइड होगा।

RNA न्यूक्लियोटाइड
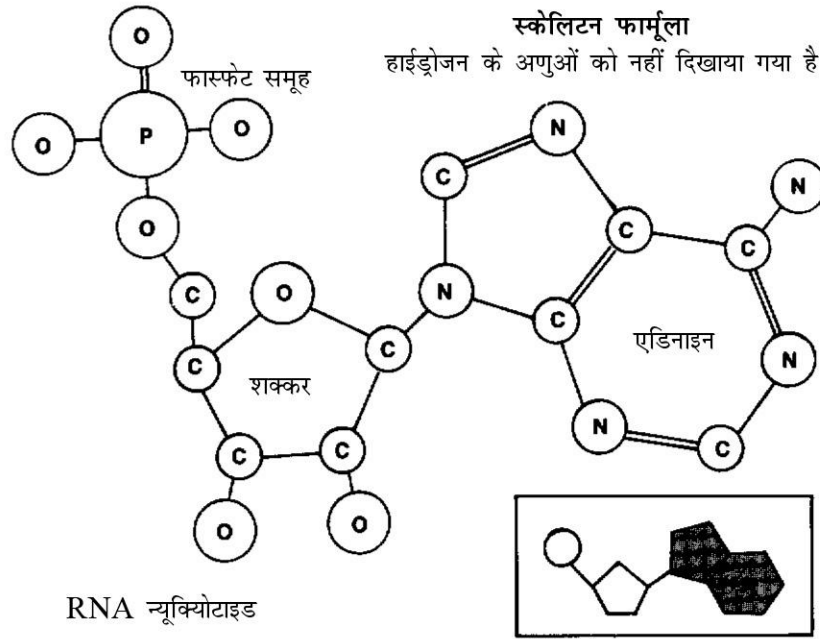
RNA के परमाणु में चार अलग-अलग न्यूक्लियोटाइड होती हैं। इसमें से एक में ऊपर दिखाए मॉडल के अनुसार एडिनाइन (A)होता है। बाकी तीन में गुआनीन (G)साईटोसीन (c) या यूरासिल (u) होगा। DNA के परमाणु में भी चार अलग-अलग न्यूक्लियोटाइड होती हैं जिनमें एडिनाइन (A), गुआनीन (G), साईटोसीन (c) या थाईमीन (t) होती है।

किसी परमाणु को मापने के तरीके होते हैं। लेवन ने सेल्स से मिले न्यूक्लिक-एसिड का साइज ज्ञात किया था। हरेक परमाणु इतना बड़ा था कि उसे लगा कि हरेक में चार एक ही प्रकार की न्यूक्लियोटाइड होंगी। न्यूक्लियोटाइड इकट्ठी इसलिए

थीं क्योंकि एक न्यूक्लियोटाइड का फास्फेट समूह ने दूसरी न्यूक्लियोटाइड के राईबोज (या डीआक्सीराईबोज) के साथ एक और जोड़ बनाया था।

DNA न्यूक्लियोटाइड
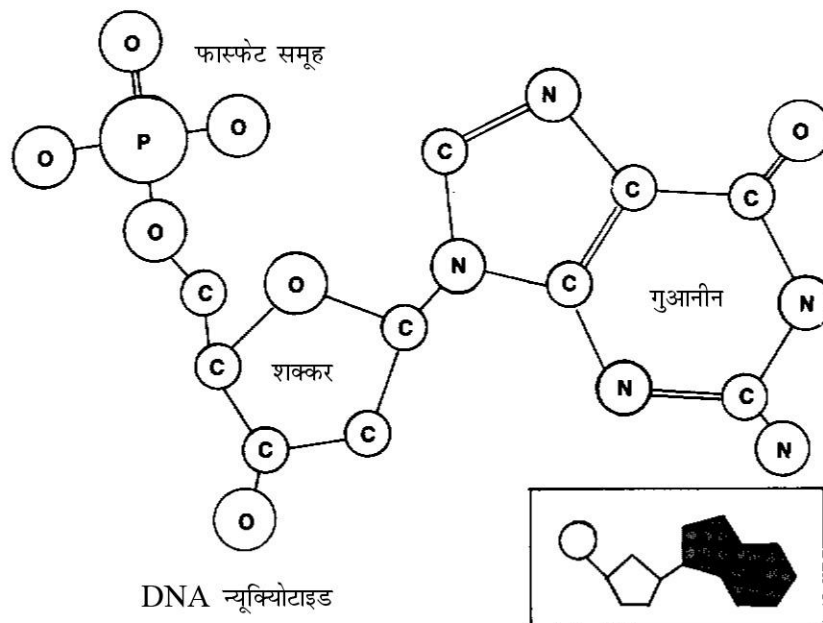
वो चारों न्यूक्लियोटाइड्स जो इकट्ठी एक-दूसरे से जुड़ी हैं को टेट्रा-न्यूक्लियोटाइड बुलाते हैं। 'टेट्रा' एक यूनानी शब्द है जिसका अर्थ 'चार' होता है।

DNA न्यूक्लियोटाइड और RNA न्यूक्लियोटाइड इस प्रकार की दिखेंगी।
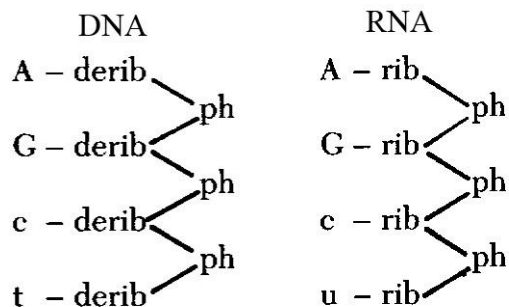
क्योंकि derib-ph और rib-ph हरेक न्यूक्लियोटाइड की एक-समान होंगी इसलिए टेट्रा-न्यूक्लियोटाइड को एक सरल तरीके से दर्शाया जा सकता है।
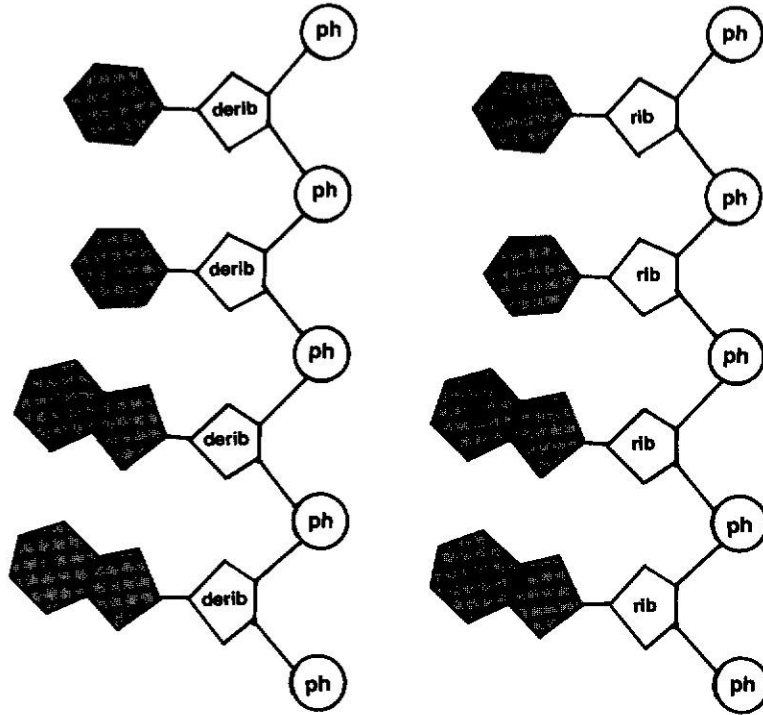
DNA और RNA के टेट्रान्यूक्लियोटाइड

न्यूक्लियोटाइड्स के ढांचे को लेकर लेवन का मत सही था उसकी पुष्टि के लिए हम सरल परमाणुओं से शुरू कर सकते हैं। इन सरल परमाणुओं पर एक ज्ञात रासायनिक तरीके द्वारा प्रक्रिया की जाएगी। उससे हमें लेवन द्वारा सुझाया ढांचा मिल जाएगा। फिर इस बनाए हुए ढांचे के गुणधर्मों का अध्ययन किया जाएगा। अगर वो न्यूक्लिक-एसिड से बनी न्यूक्लियोटाइड्स निकलीं तो फिर लेवन का मत सच होगा।

1938 में एक स्काटिश केमिस्ट एलिग्जैंडर रौबर्टस टौड (जन्म 1907) ने इस समस्या पर काम शुरू किया। उसने सभी न्यूक्लियोटाइड्स बनायीं और उसने लेवन द्वारा सुझाए ढांचे की पुष्टि की।

(आप अचरज कर रहे होंगे कि टौड को सिर्फ लेवन के मत की पुष्टि करने के लिए नोबेल पुरुस्कार क्यों मिला। इसका उत्तर है कि विज्ञान में भी सभी बातें सही और नैतिकता के आधार पर नहीं होती हैं। जब लेवन ने अपना काम किया तो किसी को इसका अंदाज नहीं था कि न्यूक्लिक-एसिड इतने महत्वपूर्ण होंगे। जब तक उनके महत्व को समझा गया और नोबेल पुरुस्कार दिए गए तब तक लेवन की मृत्यु हो गई थी।)

## 2. न्यूक्लिक एसिड्स? प्रोटीन्स?

बायोकेमिस्ट्स को न्यूक्लिक-एसिड का शरीर पर क्या असर होता है, यह समझ में नहीं आया। क्या उनका कोई महत्वपूर्ण रोल होता है?

शायद होता हो। शुरू में शोध के समय मेशर को मछलियों के स्पर्म सेल में न्यूक्लिक-एसिड मिले थे। स्पर्म सेल बहुत सूक्ष्म होते हैं और उनमें वंशानुक्रम गुणधर्मों वाले केवल पिता के जीन्स होते हैं। स्पर्म सेल फिर अंडे के सेल में प्रवेश करते हैं जिसमें मां के जीन्स होते हैं। प्रजनित (फर्टिलाइज्ड) अंडा फिर एक नए जीव को उत्पत्ति देता है। क्या न्यूक्लिक-एसिड कर कुछ सम्बंध वंशानुक्रम से हो सकता है? अगर हां, तो वे बहुत महत्वपूर्ण होंगे।

1914 में जर्मन बायोकेमिस्ट रौबर्ट जोयाचिम फौइलगिन (1884-1955) को एक लाल डाई (रंग) मिली जो DNA से मिलती थी पर RNA से नहीं। 1923 में उसने इस डाई का प्रयोग जीवित सेल्स के पतले स्लाईसिस पर किया। जहां पर DNA मौजूद था वहां डाई उससे जुड़ी और उस स्थान पर एक गहरा लाल धब्बा पड़ा। पर बाकी सभी भाग रंगहीन रहा। वो सेल का एक रंगीन नक्शा बनाने जैसा था जो DNA की स्थिति दिखाता था।

फिर प्रयोगों के बाद हरेक पौधे और प्राणी के न्यूक्लियस में DNA मिला।

1940 में स्वीडिश बायोकेमिस्ट टौर्बजौन आस्कर कैस्परसन (जन्म 1910) उसके भी एक कदम आगे गया। कुछ ऐसे एंजाइम होते हैं जो DNA को विखंडित करते हैं

और RNA को कुछ नहीं करते हैं। कैस्परसन ने एंजाइम को अलग-अलग सेल्स पर आजमाया। उसे कुछ सेल्स में केवल DNA मिला और कुछ में केवल RNA मिला। फिर उसने इन सेल्स में अल्ट्रावायलट किरणें चमकायीं। दोनों न्यूक्लिक-एसिड अलग-अलग तरीकों से अल्ट्रावायलट किरणों को जब्ज करते हैं। इससे कैस्परसन बता सकता था कि दोनों RNA और DNA सेल में मौजूद हैं या नहीं।

उसने पाया कि न्यूक्लियस में DNA हमेशा क्रोमोसोम में ही मौजूद होता था। जबकि RNA हमेशा न्यूक्लियस के बाहर साईटोप्लास्म में मौजूद होता था।

और अधिक शोध के बाद कुछ DNA साईटोप्लास्म में भी मिला और कुछ RNA न्यूक्लियस में भी। पर अधिकांश DNA हमेशा न्यूक्लियस में पाया जाता और अधिकांश RNA हमेशा साईटोप्लास्म में मिलता।

अब तक वैज्ञानिकों को इस बात अच्छी तरह अनुमान हो गया था कि नूडिल्स जैसे दिखने वाले और न्यूक्लियस में पाए जाने वाले क्रोमोसोम का वंशानुक्रम से बहुत गहरा सम्बंध था। क्रोमोसोम में जीन्स थीं आर जीन्स के माध्यम से माता-पिता अपने बच्चों को वंशानुक्रम के गुणधर्म प्रदान करते थे।
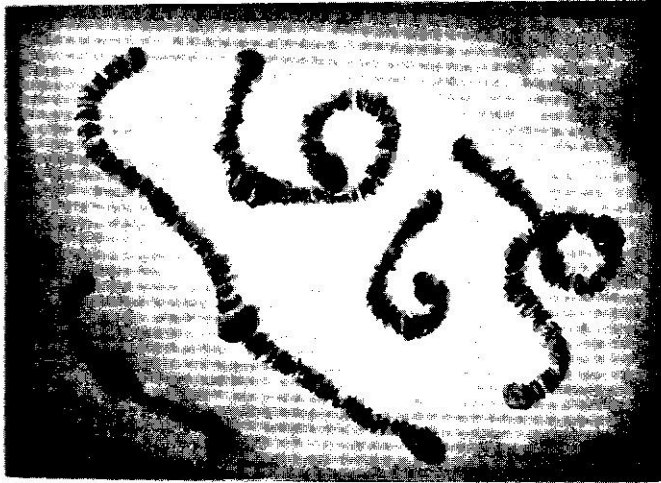
फ्रूट फ्लाई के क्रोमोसोम

DNA क्रोमोसोम में स्थित होने से लगा कि उसका वंशानुक्रम से कुछ गहरा रिश्ता होगा।

पर सभी जीवित चीजें सेल्स की नहीं बनी होती हैं। कुछ बहुत सूक्ष्म चीजें होती हैं - सेल्स से भी छोटे 'वायरस' जो सेल में घुसकर प्रजनन कर अपनी संख्या बढ़ा सकते हैं। प्रजनन करते समय 'वायरस' की संख्या बढ़ती है। वायरस किस प्रकार अगली पीढ़ी को वंशानुक्रम की जानकारी प्रदान करते हैं? वो क्या तरीका अपनाते हैं?

इसके लिए सबसे पहले वैज्ञानिकों को बिना सेल के शुद्ध वायरस की जरूरत थी। वायरस किस पदार्थ का बना है भला उसका ज्ञान उन्हें कैसे होता? शुद्ध वायरस के सैंपिल सबसे पहले अमरीकी बायोकेमिस्ट वेंडल मेरिडिथ स्टैनले (1904-1971) ने खोजे। वो टौबेको (तम्बाखू) मोजेक वायरस का अध्ययन कर रहा था। यह वायरस तम्बाखू के पौधों में बीमारी पैदा करते हैं। 1935 में वायरस लगी कुचली हुई तम्बाखू की पत्तियों में उसे सुई जैसे क्रिस्टल मिले।

यह क्रिस्टल जो तम्बाखू के शुद्ध वायरस के सैंपिल थे केवल प्रोटींस के बने थे। उसके बाद से जितने भी अन्य वायरसों का परीक्षण हुआ है वे सभी प्रोटींस के बने मिले हैं। इस शोधकार्य के लिए 1948 में स्टैनले को केमिस्ट्री का नोबेल पुरुस्कार मिला।
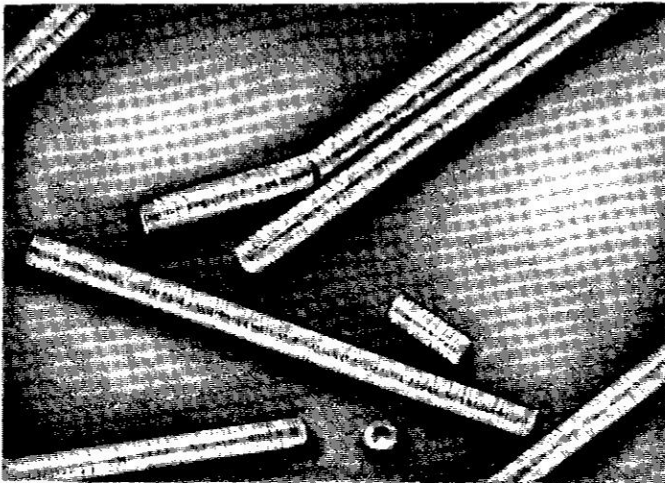
टौबेको (तम्बाखू) मोजेक वायरस

पर जल्द ही समझ में आया कि वायरस में प्रोटीन्स के अलावा भी बहुत कुछ था। 1937 में ब्रिटिश जीवशास्त्री फ्रेडरिच चार्ल्स बावडिन (जन्म 1908) ने पता किया कि टौबेको (तम्बाखू) मोजेक वायरस में प्रोटीन के अलावा RNA भी होते हैं। उसके बाद यह भी निकल कर आया है कि सभी वायरसों में न्यूक्लिक-एसिड भी होते हैं। सरल वायरसों में केवल RNA होते हैं परन्तु जटिल वायरसों में न्यूक्लिक-एसिड भी होते हैं।

आप वायरस को ऐसे मुक्त क्रोमोसोम जैसे सोच सकते हैं जो सेल का हिस्सा न हो। जब वायरस किसी सेल पर आक्रमण करता है तो सबसे पहले वो सेल के खुद के क्रोमोसोम्स पर कब्जा करता है।

क्रोमोसोम्स और वायरस किस प्रकार वंशानुक्रम को नियंत्रित करते हैं और सेल की रोजमर्रा की दिनचर्या कैसे चलाते हं? क्योंकि सभी क्रोमोसोम्स और वायरस, DNA और

प्रोटीन के बने होते हैं (सरल वायरसों को छोड़कर जिनमें सिर्फ RNA होता है)। इसलिए शायद इसका राज DNA या प्रोटीन में छिपा होगा।

पहले तो वैज्ञानिकों को लगा कि प्रोटीन्स ही जीवित सेल्स की रोजमर्रा की प्रक्रिया और वंशानुक्रम को नियंत्रित करते हों। उन्हें DNA का रोल प्रोटीन्स के सहायक के रूप में लगा।

इसका शायद एक कारण यह भी था कि पिछली एक शताब्दी से वैज्ञानिकों को जीवन के लिए प्रोटीन के परमाणु ही सबसे जटिल लगे थे। वो शायद दुनिया के सबसे अधिक जटिल परमाणु थे।

प्रोटीन्स जायंट (विशाल) परमाणुओं के बने होते हैं। हरेक परमाणु में सौ से लेकर लाख अणु तक हो सकते हैं। इसी तरह के मांड (स्टार्च) और सेल्यूलोज के जायंट (विशाल) परमाणु लकड़ी का अधिकांश भाग होते हैं। पर प्रोटीन्स के परमाणु सबसे बड़े और जटिल होते हैं।

जायंट (विशाल) परमाणुओं को आसानी से छोटी इकाईयों में विखंडित किया जा सकता है। इन छोटी इकाईयों को मोती जैसे एक माला में पिरोया जा सकता है। सामान्यतः जायंट (विशाल) परमाणु एक ही प्रकार की इकाईयां के बने होते हैं। इसलिए मांड (स्टार्च) को सरल शक्कर (ग्लूकोज) की इकाईयों में विखंडित किया जा सकता है। इसी प्रकार सेल्यूलोज को भी सरल शक्कर (ग्लूकोज) की इकाईयों में विखंडित किया जा सकता है।

प्लास्टिक, जायंट (विशाल) परमाणुओं की बनती है जिन्हें केमिस्ट प्रयोगशाला में बनाते हैं। उन्हें भी एक या दो प्रकार की सरल इकाईयों में विखंडित किया जा सकता है।

प्रोटीन परमाणुओं को भी सरल इकाईयों में विखंडित किया जा सकता है, और वे सभी अमीनो-एसिड्स होंगे। वैसे अमीनो-एसिड्स कई प्रकार के होते हैं। अक्सर प्रोटीन परमाणुओं में बीस से भी अधिक प्रकार के अमीनो-एसिड्स होते हैं।

स्टार्च, सेल्यूलोज और प्लास्टिक के परमाणु जो केवल एक या दो प्रकार की इकाईयों के बने होते हैं केवल एक-दूसरे से चेन की लम्बाई में, या फिर चेन के सीधे अथवा टेढ़े होने में अलग हो सकते हैं।

पर प्रोटीन परमाणुओं में अमीनो-एसिड्स की चेन की बीस इकाईयों के साथ-साथ उनकी संरचना में भी अंतर हो सकता है। उनकी अरबों-खरबों भिन्न संरचनाएं सम्भव हैं और हरेक का अलग परमाणु बनेगा।

इसका मतलब है कि हरेक प्रजाति के प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रोटीन्स उस प्रजाति के अन्य प्राणियों से भिन्न हो सकते हैं। क्योंकि जीवित प्राणियों के प्रोटीन्स के अलग-अलग आकार और गुणधर्म हो सकते हैं इसलिए ही उनमें इतनी विविधता होती है और वो इतने अलग-अलग प्रकार के कार्य कर सकते हैं।

लीवन के अनुसार न्यूक्लिक-एसिड में जायंट परमाणु नहीं थे। वे केवल चार अलग न्यूक्यिोटाइड्स के बने थे और न्यूक्लिक-एसिड के परमाणु में चारों न्यूक्यिोटाइड्स का केवल एक-एक सदस्य ही मौजूद था।

सेल का कार्य अलग-अलग एंजाइम्स के ऊपर चलता है और उनकी मात्रा भी बिल्कुल निश्चित होती है। यह एंजाइम्स प्रोटीन परमाणुओं के बने होते हैं। और क्योंकि हरेक सेल खुद अपनी एंजाइम्स बनाता है इसलिए हरेक सेल में एंजाइम्स को बनाने का ब्लूप्रिंट मौजूद होता है।

इससे साफ जाहिर है कि प्रोटीन परमाणु काफी जटिल होता है क्योंकि उसमें दूसरा प्रोटीन बनाने का ब्लूप्रिंट मौजूद होता है। छोटा सा, चार न्यूक्यिोटाइड का DNA इस कार्य को करने के लिए पर्याप्त नहीं लगता है।

लेवन का सोच कि हरेक न्यूक्लिक-एसिड परमाणु में केवल चार ही न्यूक्यिोटाइड्स होती हैं, गलत था। उसने सेल से जिस प्रकार न्यूक्लिक-एसिड निकाले वो बहुत हिंसात्मक तरीका था और उससे परमाणु छोटे टुकड़ों में बंट गए।

धीरे-धीरे बायोकेमिस्ट्स ने सेल से धीरे-धीरे और कुशलता से न्यूक्लिक-एसिड निकालने का काम किया। उसमें उन्हें बहुत सारे परमाणु मिले। धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा कि DNA में भी बहुत विशाल परमाणु होंगे जो शायद प्रोटीन परमाणुओं से भी बड़े हों।

पर बायोकेमिस्ट्स के दिमाग में प्रोटीन्स की 'महानता' इतनी जम के बैठ गई थी कि वे DNA को लगातार नजरंदाज करते रहे। फिर एक दिन सब कुछ बदल गया।

## 3. विजेता DNA

काफी समय से वैज्ञानिक 'न्यूमोकोकाय' का अध्ययन कर रहे थे। यह बैक्टीरिया फेंफड़ों में निमोनिया नामक बीमारी पैदा करता है। अकेले बैक्टीरियम को न्यूमोकोनोसिस कहते हैं।

न्यूमाकोकाय दो प्रकार के होते हैं। एक में बैक्टीरिया का सेल शक्कर जैसे परमाणुओं की चिकनी कवच से ढंका होता है। इस प्रजाति को न्यूमोकोकस-एस (यहां ए -स्मूद) कहते हैं। दूसरी प्रजाति में चिकनी कवच नहीं होती है और उसकी सतह खुरदुरी होती है। इसे न्यूमोकोकस-आर (यहां आर - रफ) कहते हैं।

न्यूमोकोकस-आर में बाहरी कवच बनाने वाली जीन की कमी होती है। 1928 में अमरीकी जीवशास्त्री फ्रेडरिच रीफ ग्रिफिथ (जन्म 1891) ने न्यूमोकोकस-एस को कुछ मात्रा को खूब गर्म किया जिससे उसके सारे बैक्टीरिया मर जाएं। उसने मृत बैक्टीरिया वाले तरल को जीवित न्यूमोकोकस-आर में डाला। आश्चर्य की बात यह थी कि न्यूमोकोकस-आर प्रजनन करते समय न्यूमोकोकस-एस में बदल गया।
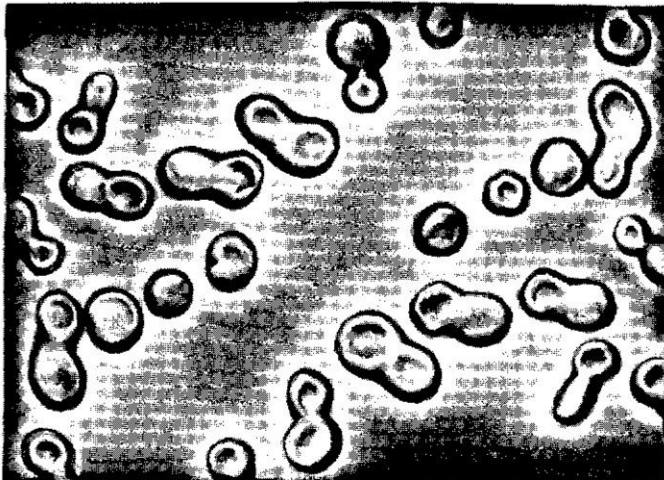
न्यूमोकोकस बैक्टीरिया

न्यूमोकोकस-एस वैसे मृत था परन्तु उसकी चिकनी कवच पैदा करने वाली जीन अभी भी काम कर रही थी। जब उसे न्यूमोकोकस-आर में - जिसमं यह जीन गायब थी, डाला गया तब बैक्टीरियम चिकनी कवच बना

कर न्यूमोकोकस-एस का उत्पादन कर पाया।

अब वैज्ञानिकों ने इस जीन को अलग करने की कोशिश की - इसे 'परिवर्तन-नियम' कहते हैं। वैज्ञानिकों को लगा कि यह जीन एक प्रकार का प्रोटीन होगी।

एक कनेडियन-अमरीकी जीवशास्त्री औस्वोल्ड थियोडोर एवेरी (1877-1955) की इस समस्या में विशेष रुचि थी। धीरे-धीरे उसने 'परिवर्तन-नियम' वाले तरल को शुद्ध और अतिशुद्ध किया। अंत में उसमें बाकी सभी अन्य चीजें निकल गयीं और केवल 'परिवर्तन-नियम' बचा।

बचे तरल के परीक्षण पर उसे उसमें केवल DNA मिला। उसे उसमें प्रोटीन नहीं मिला। 1944 में एवेरी अपने दो अन्य साथियों के साथ इस निर्णय पर पहुंचा कि DNA बिना किसी प्रोटीन की मदद के एक जीन था।

अगर यह सही था तो शायद सभी जीन्स DNA की बनी हों। और शायद DNA ही सेल्स का वो पदार्थ हो जो सेल्स के बर्ताव को नियंत्रित करता हो। यह DNA ही था जो वंशानुक्रम गुणधर्मों के ब्लूप्रिंट को एक सेल से दूसरे सेल में उनके विभाजन के समय प्रसारित करता था। इसी प्रकार माता-पिता, सभी प्राणी और पौधे वंशानुक्रम गुणधर्मों के ब्लूप्रिंट दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाते थे।

ऐवरी की एक खोज के बाद वैज्ञानिकों ने और प्रमाण जुटाए और वे इस निर्णय पर पहुंचे कि DNA ही सेल का नियंत्रण करता था। उदाहरण के लिए 1952 में एक अमरीकी जीवशास्त्री एल्फ्रेड डे हर्शी (जन्म 1908) ने एक अद्भुत खोज की - जब कोई वायरस किसी सेल पर आक्रमण करता है तो वायरस का केवल DNA ही सेल में प्रवेश करता है। वायरस का प्रोटीन सेल के बाहर ही रहता है। सेल के अंदर वायरस-DNA अपने जैसा और वायरस-DNA पैदा करता है, और बाहर छोड़े हुए प्रोटीन को भी प्रचुर मात्रा में पैदा करता है। इससे एक बात एकदम स्पष्ट हो गई - कि DNA परमाणु के अंदर प्रोटीन परमाणुओं का ब्लूप्रिंट होता है।

1944 में जब ऐवरी DNA सम्बंधी अपनी खोजों का ऐलान कर रहा था तभी जटिल मिश्रणों के परीक्षण की एक नई पद्धति का इजाद हुआ। पेपर-क्रोमैटोग्राफी की

इस विधि द्वारा रासायनिक मिश्रण को उसके अवयवों में अलग–अलग करना सम्भव था। इस तकतीक द्वारा तुरन्त DNA की जांच–परख की गई।

एक आस्ट्रियन–अमरीकी बायोकेमिस्ट एरविन चारगाफ (जन्म 1905) ने DNA को विखंडित किया जिससे कि उसके सभी प्यूरीन और पिरिमिडीन ढीले पड़ जाएं। उसने फिर दो प्यूरीन (एडिनाइन, गुआनीन) और दोनों पिरिमिडीन (साईटोसीन, थायमीन) का विश्लेषण किया यह जानने के लिए कि किस की कितनी मात्रा थीं।
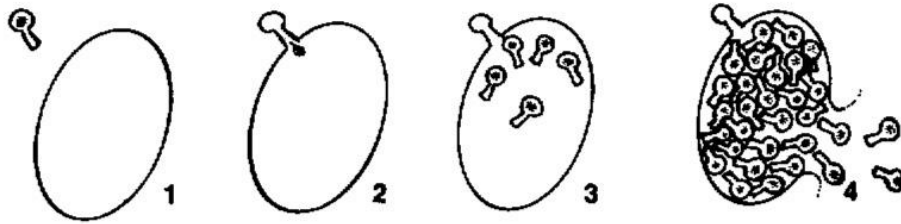
वायरस, एक सेल पर आक्रमण और उसे ध्वस्त करते हुए

1948 में चारगाफ ने दिखाया कि DNA के नमूनों के सभी नमूनों में प्यूरीन परमाणुओं और पिरिमिडीन परमाणुओं की संख्या एक–समान थी। इसका मतलब एडिनाइन और गुआनीन की संयुक्त मात्रा हमेशा साईटोसीन और थाईमीन की संयुक्त मात्रा के बराबर थी, यानि ($A + G = c + t$)। साथ में एडिनाइन परमाणुओं की संख्या हमेशा थाईमीन के परमाणुओं जितनी थी, यानि ($A = t$) और साथ में गुआनीन परमाणुओं की संख्या हमेशा साईटोसीन के परमाणुओं जितनी थी, यानि ($G = c$)

ऐसा क्यों था इस पर चारगाफ कुछ अधिक प्रकाश नहीं डाल पाया। पर इन समानताओं का DNA परमाणु के ढांचे के साथ जरूर कुछ सम्बंध था।

DNA परमाणु के ढांचे के परीक्षण का एक और तरीका था। उसके घोल का तब तक शुद्ध करो जब तक उसमें केवल DNA के परमाणु बचें और फिर उन नाजुक रेशों को सावधानी से घोल में से निकालो। उन रेशों पर एक्स–रे बरसाओ जो परमाणु के अंदर अणुओं से टकराकर किसी दिशा में चली जाएंगी।

मान लो DNA के लम्बे परमाणु का ढांचा बार-बार दोहराता है। और अणुओं का एक विशेष समूह बार-बार नियमितता से खुद को एक चेन जैसे दोहराता है। (जैसे फर्श के टाईल्स और वाल-पेपर के नमूने दोहराते हैं।)

उस स्थिति में एक्स-रे उन अणुओं के समूह के साथ टकराकर हर बार उसी दिशा में जाएंगी। उस एक विशेष दिशा में बहुत मात्रा में अणु जाएंगे और एक किरण जैसी बनाएंगे। वो सभी एक विशेष दिशा में होंगे।

एक्स-रे फोटोग्राफिक फिल्म पर अपना निशान छोड़ते हैं इसलिए उनका चित्र लिया जा सकता है। अगर परमाणु में अणु कोई विशेष नमूने में नहीं सजे होंगे तो वे भिन्न दिशाओं में जाएंगे और फिल्म पर एक धुंधला सा चित्र बनेगा।

पर अगर परमाणु का ढांचा बार-बार दोहराएगा तो एक्स-रे एक विशेष दिशा में जाएंगे और फिल्म पर बिन्दियों का एक नमूना बनेगा। इन बिन्दियों के नमूनों से - जिन्हें एक्स-रे डिफ्रैक्शन पैटर्न कहते हैं से परमाणु के ढांचे - उसके अंदर अणुओं के समूह किस प्रकार दोहराते हैं उनका अनुमान लगाना सम्भव होगा। फिर परमाणु और उसके सभी अणुओं का तीन-आयामी मॉडल बनाना सम्भव होगा।

लाईनस पौलिंग

1951 में अमरीकी केमिस्ट लाईनस पौलिंग (जन्म 1901) प्रोटीन के ढांचे पर काम कर रहे थे। अणु किस प्रकार परमाणु में फिट हुए हैं इसे समझने के लिए वो एक्स-रे डिफ्रैक्शन पैटर्न का उपयोग कर रहे थे। उन्होंने दिखाया कि अमीनो-एसिड्स की चेन (लड़ियां) एक हीलिक्स में मुड़ेंगी। आम जिंदगी में हीलिक्स का आकार घुमावदार सीढ़ियों और पलंग की स्प्रिंग में इस्तेमाल होता है।

केवल बहुत सरल प्रोटीन्स के अमीनो-एसिड्स ही मुड़ी हीलिक्स की एक सीधी रेखा बनाएंगी। पर एंजाइम जैसे प्रोटीन्स में हीलिक्स बहुत जटिल आकारों में मुड़ती हैं। और जब फिर बायोकेमिस्ट्स ने हीलिक्स के बारे में सोचना शुरू किया तो

फिर काफी जटिल समस्याएं सुलझने लगीं। कई प्रोटीन परमाणुओं के ढांचें आज हमें पता हैं।

पौलिंग के 'हीलिक्स' के सुझाव के बाद बहुत से बायोकेमिस्ट्स ने उस दिशा में सोचना आरम्भ किया। उन्हें लगा कि DNA परमाणु को बनानी वाली न्यूक्ल्योटाइड्स की लम्बी चेनें भी कहीं हीलिक्स में मुड़ी न हों।

## 4. डबल हीलिक्स

दो वैज्ञानिकों की DNA हीलिक्स में विशेष रुचि थी। उनमें से एक ब्रिटिश थे फ्रांसिस हैरी काम्पटन क्रिक (जन्म 1916) और दूसरे उनके अमरीकी साथी थे जेम्स डुई वाटसन (जन्म 1928)।

उन्होंने अलग-अलग आकार की हीलिक्स के साथ प्रयोग किया पर उनमें से कोई भी बात उन्हें ठीक नहीं लगी। हीलिक्स को अणुओं के प्राकृतिक मुड़ने के तरीके के अनुरूप मुड़ना था। हीलिक्स की आकृति को एक्स-रे डिफ्रैक्शन पैटर्न द्वारा भी समझाना था। न्यूक्लिक-एसिड कैसे काम करते हैं इसकी भी व्याख्या उन्हें करनी थी। वाटसन और क्रिक ने बहुत कोशिश की परन्तु कोई भी सही हल नहीं निकला।

इसके लिए उन्हें शुद्ध DNA के उच्च क्वालिटी के एक्स-रे डिफ्रैक्शन फोटो चाहिए थे जो उस समय मिलना बहुत मुश्किल थे।

पर भाग्यवश जहां वाटसन और क्रिक काम कर रहे थे वहां पर एक न्यूजीलन्ड में जन्मा बायोकेमिस्ट मौरिस हयूज फ्रेडरिक विल्किंस (जन्म 1916) भी काम कर रहा था। उसने DNA के बहुत शुद्ध रेशे तैयार किए थे जिनसे उच्च क्वालिटी के एक्स-रे डिफ्रैक्शन फोटो मिलना सम्भव था। उसके साथ एक अन्य ब्रिटिश केमिस्ट काम करता थीं - रोजलिंड एल्सी फ्रैंकलिन (1920-1958) और उसने विल्किंस के DNA के रेशों से बहुत उच्च क्वालिटी के एक्स-रे डिफ्रैक्शन फोटो तैयार किए थे।

रोजलिंड फ्रैंकलिन

फ्रैंकलिन एक उच्च कोटि की वैज्ञानिक थी और उसने अपने फोटो को अच्छी तरह समझने में पर्याप्त समय लगाया। कहीं कोई गलती न हो इसलिए उसने उन पर बहुत मनन-चिंतन किया पर उस बीच उसने वो फोटो किसी और को नहीं दिखाए।

विल्किंस ने फ्रैंकलिन की अनुमति लिए बिना वो फोटो वाटसन और क्रिक को दिखाए। फोटो देखते ही वाटसन के दिमाग में उनका ढांचा कैसा हो उसका विचार कौंधा।

वाटसन और क्रिक को लगा कि जैसे प्रोटीन के परमाणु में अमीनो-एसिड्स की चेन होती है वैसे ही DNA के परमाणु में न्यूक्ल्योटाइड की डबल-चेन होगी। न्यूक्ल्योटाइड की डबल-चेन का ढांचा इस प्रकार होगा जिसमें प्यूरीन और पिरिमिडीन आमने-सामने होंगी।
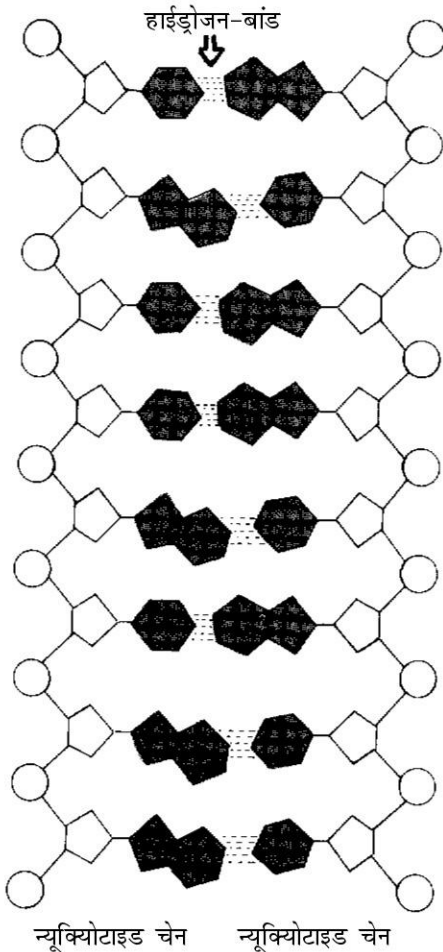
केमिस्टों के अनुसार प्यूरीन और पिरिमिडीन आपस में हाईड्रोजन-बांडस से जुड़े होंगी। परमाणुओं में अणुओं को जोड़ने वाले जो बंध (बांडस) होते हैं वे हाईड्रोजन-बांडस से कहीं ज्यादा कमजोर होते हैं। साधारण तौर पर यह हाईड्रोजन-बांडस, न्यूक्ल्योटाइड चेन्स को आपस में जोड़े रखते हैं पर कुछ महत्वपूर्ण क्षणों में दोनों चेनें अलग-अलग भी हो सकती हैं।

यह दोनों चेन्स असल में किसी जैकिट की चेन के दोनों ओर स्थित दांत जैसी होती हैं। साधारण स्थितियों में दोनों ओर के दांतों से चेन बंद रहती है पर नीचे की ओर खींचने पर दोनों ओर दांतों की लड़ियां अलग-अलग हो जाती हैं।

दोनों न्यूक्लियोटाइड चेन्स के बीच समान दूरी बनाए रखने के लिए डबल-रिंग की प्यूरीन हमेशा सिंगिल-रिंग की पिरिमिडीन के विपरीत स्थित होगी। इससे न्यूक्लियोटाइड चेन्स के बीच की दूरी इतनी चौड़ी हो जाएगी कि उसमें हरेक स्थिति पर तीन रिंग्स समा सकेंगे। अगर दो पिरिमिडीन्स आमने-सामने होतीं तो यह सम्भव न होता। और अगर एक प्यूरीन, दूसरी प्यूरीन के सामने होती तो भी यह सम्भव न होता। ऐसी स्थितियों में दोनों चेन्स आपस में एक-दूसरे से जुड़ नहीं पातीं।

हाईड्रोजन-बांडस एडिनाइन और थाईमीन को अच्छी तरह से जोड़ते हैं। वो गुआनीन और साईटोसीन को भी अच्छी तरह जोड़ते हैं। पर एडिनाइन / साईटोसीन और थाईमीन / गुआनीन का बंध (बांड) कमजोर हो जाता है। न्यूक्लियोटाइड की एक चेन पर क्रमांक कैसा भी हो सकता है पर फिर दूसरी चेन पर उनसे मैचिंग प्यूरीन्स और पिरिमिडीन्स होना अनिवार्य हैं। c के साथ G , और t के साथ A , और इसका उल्टा भी। अगर एक न्यूक्लियोटाइड में क्रम A, G, A, t, t, c, G, G, G, c हो तो दूसरी न्यूक्लियोटाइड में क्रम t, c, t, A, A, G, c, c, c, G होगा।

**DNA की डबल-हीलिक्स**

इससे चारगाफ की बात समझ में आएगी। उसे DNA के परमाणुओं में हमेशा समान मात्रा में गुआनीन और साईटोसीन मिले, और समान मात्रा में थाईमीन और एडिनाइन मिले थे।

अंत में दोनों हीलिक्स एक-दूसरे से मुड़कर एक डबल-हीलिक्स बनाती थीं। जैसे दो घुमावदार सीढ़िया आपस में जुड़ी हों जिससे एक-दूसरे के हत्थे उनके वक्र में जुड़े हों।

1953 में वाटसन और क्रिक ने जब डबल-हीलिक्स का वर्णन किया तो उससे पूरी दुनिया में एकदम सनसनी मच गई। 1962 में इस शोधकार्य के लिए वाटसन, क्रिक और विल्किंस को चिकित्सा और फिसियौलिजी का नोबेल पुरुस्कार मिला।

फ्रैंकलिन को भी यह पुरुस्कार मिलना चाहिए था पर चार वर्ष पूर्व ही उसका देहान्त हो गया था।

वाटसन और क्रिक के ढांचे से यह समझ में आया कि प्रजनन या विखंडन के समय DNA परमाणु अपनी प्रतिलिपि 'कापी' कैसे बनाते हैं। क्योंकि हरेक DNA परमाणु में अपनी प्रतिलिपि बनाने की क्षमता होती है इसलिए त्वचा के सेल्स, नए त्वचा के सेल्स बना सकते हैं और जिगर के सेल्स, नए जिगर के सेल्स बना सकते हैं। इसलिए मां के अंडे में मां के गुणधर्म, और पिता के स्पर्म सेल्स में पिता के गुणधर्म होते हैं और बच्चे के DNA परमाणु में दोनों माता-पिता के गुणधर्मों का समावेश होता है।
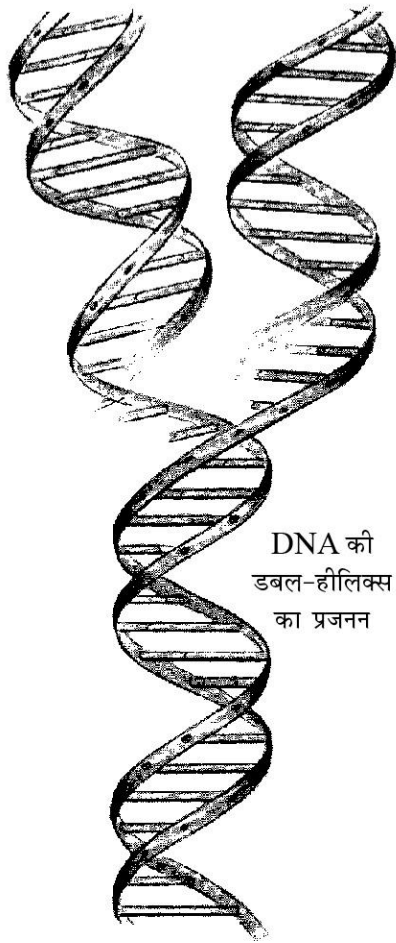
DNA की डबल-हीलिक्स का प्रजनन

यह इस तरह से काम करता है। सेल के विखंडन के समय हरेक DNA परमाणु अपनी एक प्रतिलिपि बनाता है और प्रत्येक नए सेल को हूबहू वैसे ही क्रोमोसोम का एक सेट मिलता है।

जो नया प्राणी अपने मां के अंडे क DNA परमाणु, और पिता के स्पर्म सेल के DNA परमाणु से पैदा होता है उसमें कुछ गुणधर्म अपनी मां के और कुछ गुणधर्म अपने पिता के होंगे। अगर DNA की प्रतिलिपि शुद्ध बनेगी तो बालक या तो मां, या पिता, या फिर उन दोनों के बीच जैसा दिखेगा।

पर असलियत में सब कुछ एकदम ठीक और शुद्ध नहीं होता है। प्रतिलिपियां बनाते समय अक्सर कुछ-कुछ गल्तियां होती हैं। कभी कोई गलत न्यूक्यिोटाइड स्थान घेर लेती है और कुछ समय के बाद ही वहां से हटती है। किसी अन्य स्थान पर न्यूक्यिोटाइड का स्थान रिक्त रहता है या फिर एक की बजाए दो न्यक्यिोटाइड्स जम कर बैठ जाती हैं। इससे DNA परमाणु में कुछ बदल आती है और यह परिवर्तन भविष्य की प्रतिलिपियां बनाने के लिए बरकरार रहता है।

इससे कभी म्यूटेशन होता है - यानि नए सेल या नए जीव में कुछ ऐसे गुणधर्म आ जाते हैं जो उसके माता-पिता के सेल्स में नहीं थे। इन्हीं म्यूटेशन्स से ही आगे एवोल्यूशन (विकास प्रक्रिया) का काम आगे बढ़ता है।

## 5. ट्रिपलिट से अमीनो-एसिड्स तक

अभी तक प्रतिलिपि बनाने की प्रक्रिया केवल यही समझाती है कि DNA परमाणु से नया DNA परमाणु कैसे बनता है। पर वो सेल्स और जीवित प्राणियों को कैसे नियंत्रित करता है? उसके ही मार्गदर्शन में एंजाइम्स का उत्पादन होता है जो सेल्स में रासायनिक बदलाव को नियंत्रित करता है। DNA परमाणु में न्यूक्लियोटाइड का क्रम, एंजाइम्स के परमाणु में अमीनो-एसिड्स क क्रम को नियंत्रित करेगा।

पर यह कैसे सम्भव है? प्रत्येक एंजाइम्स के परमाणु में बीस अन्य एंजाइम्स एक विशेष संरचना में होती हैं। जबकि DNA परमाणु में खास तरीके से केवल चार न्यूक्लियोटाइड ही होती हैं। बीस अमीनो-एसिड्स की जानकारी को केवल चार न्यूक्लियोटाइड को कसे ठूंसा जा सकता है?

यह कार्य असम्भव नहीं है। अंग्रजी भाषा में 26 अक्षर होते हैं परन्तु मोर्स-कोड द्वारा किसी भी अक्षर को केवल दो सिग्नल - डाट (बिन्दी) और डैश (छोटी लकीर) द्वारा संप्रेषित किया जा सकता है। इसके लिए हरेक अक्षर के लिए डाट-डैश का एक अलग नमूना तैयार किया जा सकता है। सिर्फ डाट-डैश से अनेकों नमूने बनाए जा सकते हैं।

वाटसन और क्रिक द्वारा DNA की संरचना की खोज के बाद अमरीकी-रूसी वैज्ञानिक जार्ज गैमोव (1904-1968) ने सुझाव दिया कि अकेली न्यूक्लियोटाइड नहीं, परन्तु न्यूक्लियोटाइड का एक समूह, एक विशेष अमीनो-एसिड्स को निर्धारित करता था।

मान लें कि आप DNA की न्यूक्लियोटाइड चेन में हरेक न्यूक्लियोटाइड-जोड़ी का अध्ययन कर रहे हों। किसी जोड़ी की पहली न्यूक्लियोटाइड, चार में से कोई भी हो

सकती है, और दूसरी भी चार में से कोई भी हो सकती है। इस प्रकार उनकी 4 x 4 की 16 जोड़ियां बनना सम्भव है। आप चाहें तो इन 16 सम्भावनाओं को लिख सकते हैं – जैसे GA, Gc, cG, Ac, At, आदि। और जब आप सभी सम्भावनाओं को लिख डालेंगे तो उनकी संख्या 16 होगी।

पर शायद सोलह जोड़ियां पर्याप्त न हों। आप तीन न्यूक्लियोटाइड को इकट्ठा लें। तब आपके पास 4 x 4 x 4 यानि 64 सम्भावनाएं होंगी। यह संख्या पर्याप्त से भी अधिक होगी। आप दो, तीन अथवा 4 ट्रिपलिट से हरेक अमीनो–एसिड्स को निर्धारित कर पाएंगे। आप एक ट्रिपलिट से अमीनो–एसिड्स की चेन की शुरुआत को निर्धारित कर सकते हैं और एक दूसरे ट्रिपलिट से चेन के अंत को।

पर DNA परमाणु में न्यूक्लियोटाइड–ट्रिपलिट के क्रम की जो जानकारी समाहित है वो जानकारी सेल जहां एंजाइम परमाणु बनते हैं कैसे पहुंचती है? DNA क्रोमोसोम के अंदर होता है और क्रोमोसोम सेल के न्यूक्लियस में होते हैं। जबकि एंजाइम का उत्पादन सेल के न्यूक्लियस के बाहर सायटोप्लाज्म में होता है।
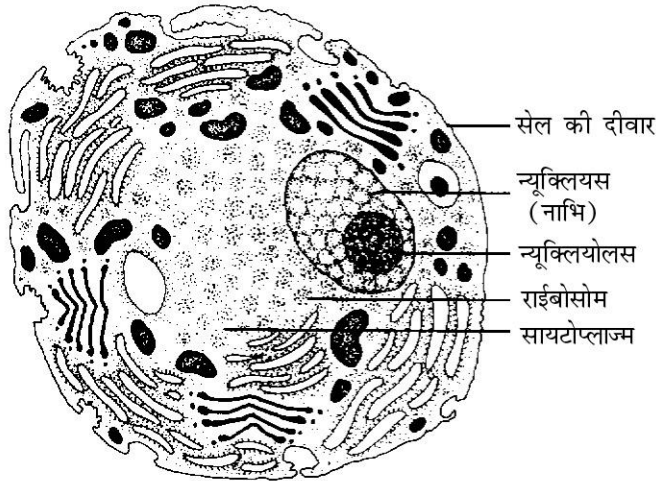
एक सेल का चित्र

1956 में रूमानियन–अमरीकी जीव वैज्ञानिक जार्ज एमिल पलाडे (जन्म 1912) ने एंजाइम का कहां उत्पादन होता है इस बात की खोज की। इसके लिए उसने एक इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप का उपयोग किया। उससे सेल के अंदरूनी भाग का बहुत अधिक आवर्धन होता था। उसे प्रत्येक मानवी सेल के सायटोप्लाज्म में डेढ़ लाख छोटे–छोटे ढांचे दिखे जहां एंजाइम का उत्पादन होता था। इनमें से हरेक ढांचे में काफी मात्रा में RNA (राईबोन्यूक्लिक–एसिड) पाया गया और इसीलिए उनका नाम 'राईबोसोम' रखा गया।

अपने इस शोधकार्य के लिए पलाडे को संयुक्त रूप से 1974 का नोबेल पुरुस्कार मिला।

नोबेल पुरुस्कार विजेता

फ्रैंकौइज जेकब 1965

जैक्यू ल्यूसीन मोहनोह 1965

पर अभी भी प्रश्न है कि DNA परमाणु में समाहित जानकारी क्रोमोसोम द्वारा राईबोसोम तक कैसे पहुंची? 1961 में दो फ्रेंच बायोकेमिस्ट जैक्यू ल्यूसीन मोहनोह (1910–1976) और फ्रैंकौइज जेकब (जन्म 1920) के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर राईबोसोम में था। राईबोसोम न्यूक्लियस और सायटोप्लाज्म (विशेषकर राईबोसोम) दोनों स्थानों पर मिलता था।

RNA का ढांचा DNA जैसा ही है – अंतर इतना है कि उसमें डीआक्सीराईबोज के स्थान पर राईबोज होता है और थाईमीन के स्थान पर यूरासिल होती है। जब DNA परमाणु खुद की प्रतिलिपि बनाता है तो कुछ समय के लिए वो शायद DNA की न्यूक्यिोटाइड–चेन की बजाए कुछ समय के लिए RNA की न्यूक्यिोटाइड–चेन बनाता है।

नोबेल पुरुस्कार विजेता

एल्ब्रेक कौसिल 1910

वेन्डल स्टैनली 1948

एलिग्जैंडर टौड 1957

RNA की न्यूक्यिोटाइड चेन के न्यूक्यिोटाइड का क्रम बिल्कुल DNA की न्यूक्यिोटाइड–चेन के क्रम की तरह ही होगा। अंतर सिर्फ इतना होगा कि उसमें थाईमीन (t) के स्थान पर यूरासिल (u) होगा। फिर RNA का परमाणु न्यूक्यिस में से बाहर निकलेगा और पोस्टमैन जैसे DNA में संचित जानकारी को राईबोसोम तक

पहुंचाने का काम करेगा। इसीलिए RNA का परमाणु को मैसेंजर-RNA (पोस्टमैन)का नाम दिया गया है।

मोहनोह और जेकब का मत सही निकला और उन दोनों को इस कार्य और न्यूक्लिक-एसिड पर शोधकार्य के लिए 1956 में चिकित्सा और फिसियौलिजी का नोबेल पुरुस्कार संयुक्त रूप से मिला।

इस बीच एक अमरीकी-स्पैनिश बायोकेमिस्ट सेवयेरो ओछोआ (जन्म 1905) ने एक एंजाइम की खोज की जो न्यूक्लियोटाइड को जोड़कर एक RNA की चेन बना सकती थी। इससे कृत्रिम या आरटिफिशियल RNA निर्माण करना सम्भव हुआ। इस शोध के लिए 1959 में ओछोआ को चिकित्सा और फिसियौलिजी का नोबेल पुरुस्कार संयुक्त रूप से मिला।

मैसेंजर-RNA की प्रक्रिया समझ में आने के बाद अमरीकी बायोकेमिस्ट मार्शल वारेन निरिनबर्ग (जन्म 1927) ने कृत्रिम मैसेंजर-RNA कर निर्माण शुरू किया। चुने हुए न्यूक्लियोटाइड से शुरू कर वो विशेष प्रकार की ट्रिपलिट का मैसेंजर-RNA बना पाया। फिर वो अमीनो-एसिड्स चेन में उनसे बने अमीनो-एसिड्स का अध्ययन करता रहा। इस प्रकार निरिनबर्ग ने 'जेनेटिक-कोड' की गुत्थी को सुलझाना शुरू किया। अब उसे पता था कि कौन सी न्यूक्लियोटाइड-ट्रिपलिट किस अमीनो-एसिड्स का निर्माण करती थी। 1967 तक प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड-ट्रिपलिट, का उसके अमीनो-एसिड्स के साथ सम्बंध जुड़ चुका था। और इस प्रकार 'जेनेटिक-कोड' की गुत्थी पूरी तरह सुलझ गई थी।

1968 में निरिनबर्ग और एक अमरीकी-भारतीय केमिस्ट हरगोविंद खुराना को संयुक्त रूप से चिकित्सा और फिसियौलिजी का नोबेल पुरुस्कार मिला।

नोबेल पुरुस्कार विजेता

मैक्स डैलब्रक
1969

सैल्वैडोर लूरिया
1969

जब निरिनबर्ग 'जेनेटिक-कोड' पर काम कर रहा था तभी एक अन्य अमरीकी बायाकेमिस्ट महलौन बुश होगलैन्ड (जन्म 1921)

साईटोप्लाज्म में छोटे राईजोम्सस खोज रहा था।

यह दो-सिरों वाले परमाणु थे। इनके एक ओर न्यूक्योटाइड-ट्रिपलिट थी जो मैसेंजर-RNA कि किसी कसी विशेष ट्रिपलिट से जाकर फिट होती। दूसरी तरह एक और भाग था जो एक विशेष अमीनो-एसिड्स से जाकर जुड़ता। क्योंकि यह RNA ट्रिपलिट से अमीनो-एसिड्स तक जानकारी को संप्रेक्षित करता इसलिए उसे ट्रांस्फर-RNA का नाम दिया गया।

आप उसकी कार्य प्रणाली को देख सकते हैं। मैसेंजर-RNA, DNA परमाणु के हिस्से की प्रतिलिपि से बनता है। फिर मैसेंजर-RNA, राईबोसोम की यात्रा करता है जहां पर मैसेंजर-RNA परमाणु, ट्रांस्फर-RNA के तमाम ट्रिपलिट के साथ जुड़ जाते हैं। प्रत्येक ट्रिपलिट को वही ट्रांस्फर-RNA का परमाणु मिलता है जो उस ट्रिपलिट में फिट होता है, दूसरा कोई नहीं। ट्रांस्फर-RNA के दूसरे सिर पर अमीनो-एसिड्स आकर्षित होते हैं। और केवल वही अमीनो-एसिड्स वहां जुड़ते हैं जो ट्रांस्फर-RNA के इस सिरे के साथ मेल खाते हैं। इसके बाद सारे अमीनो-एसिड्स चिपक जाते हैं और हमें एक विशेष प्रकार का एंजाइम मिलता है।

एक अमेरिकन केमिस्ट रौबर्ट विलियम हौली (जन्म 1922) ने ट्रांस्फर-RNA का सावधानी पूर्वक अध्ययन किया। 1962 तक उसने कई किस्म के ट्रांस्फर-RNA का शुद्धिकरण किया। 1965 तक उसने सही न्यूक्योटाइड को जोड़कर ट्रांस्फर-RNA को कृत्रिम रूप से पैदा भी किया। 1968 में उसे, निरिनबग और खुराना के साथ संयुक्त रूप से नोबेल पुरुकार मिला।

नोबेल पुरुस्कार विजेता

मार्शल निरिनबग
1968

हरगोविंद खुराना
1968

रौबर्ट हौली
1968

DNA के परमाणु कभी-कभी विचित्र तरीके से बदलते हैं। 1946 में एक जर्मन जीव वैज्ञानिक मैक्स डलब्रक (1906-1981) और इटैलियन-अमरीकी जीव वैज्ञानिक सैल्वैडोर एडवर्ड लूरिया ने पाया कि वायरसों में कभी-कभी DNA के परमाणु बिना किसी कारण के टूट जाते थे। फिर एक वासरस के DNA का एक टुकड़ा, दूसरे वायरस के DNA के टुकड़े के साथ मिलकर एक बिल्कुल नए किस्म का वायरस बनाते थे। उसी काल में हर्शी ने भी यही खोज की। 1969 में तीनों को संयुक्त रूप से चिकित्सा का नोबेल पुरुस्कार मिला।

अब प्रश्न यह था कि क्या वैज्ञानिक इस प्रक्रिया को जानबूझ कर दोहरा सकते थे? क्या वो DNA के परमाणुओं को तोड़कर उन्हें दुबारा अलग-अलग तरीकों से जोड़ सकते थे?

दो अमरीकी जीव वैज्ञानिकों - डैनियल नैथेंस (जन्म 1928) और हैमिल्टन स्मिथ (जन्म 1931) ने 1970-71 में उन एंजाइम्स की खोज की जो एक विशेष न्यूक्यिोटाइड समूह के आने पर DNA को विखंडित कर सकती थीं। इससे DNA को कई बड़े टुकड़ों में विखंडित किया जा सकता था। DNA परमाणु का ढांचा पता होने से आप उन टुकड़ों की भी सही भविष्यवाणी कर सकते थे। 1978 में नैथेंस और स्मिथ को संयुक्त रूप से चिकित्सा और फिजियालोजी का नोबेल पुरुस्कार मिला।

रीकाम्बिनेन्ट DNA तकनीकों का उपयोग कर आप एक नया बैक्टीरिया बना सकते हैं जिसकी जीन्स नई, एंजाइम्स नई और गुणधर्म भी अलग होंगे। आप इस नए बैक्टीरिया की सहायता से इंस्यूलिन बना सकते हैं जो मधुमेय (बायबीटीस) के मरीजों के लिए वरदान होता है। आप अन्य जानवरों का इंस्यूलिन उपयोग कर सकते हैं पर मनुष्यों के इंस्यूलिन का उपयोग सबसे उपयुक्त होगा।

बैक्टीरिया से आप कई अन्य महत्वपूर्ण पदार्थ बना सकते हैं। आप प्रदूषित पानी को साफ पानी में बदल सकते हैं और कुछ अन्य उपयोगी रासायनिक क्रियाएं कर सकते हैं।

इसके लिए कुछ सावधानी बरतनी होगी। अगर कुछ ऐसे बैक्टीरिया पैदा हो गए जिससे लोगों को गंभीर बीमारियां होंगी, तो फिर क्या होगा? इसकी सम्भावना कम है पर जीव वैज्ञानिकों को इसको ध्यान में रखना चाहिए।

क्या मीशर ने कभी कल्पना की होगी कि जो पदार्थ उसने एक शताब्दी पूर्व खोजा था उसमें जीवन - वायरस से लेकर मनुष्यों तक के सभी परमाणु मौजूद होंगे? क्या उसे पता होगा कि मनुष्य उसके काम को और आगे ले जाकर रीकाम्बिनेन्ट DNA तकनीकों का उपयोग कर 'जेनिटिक इंजिनियरिंग' की एक नई शाखा शुरू कर देंगे?

नहीं, मेशर को यह नहीं पता होगा!

अंत